हरियाणा में कैसेट संस्कृति

दीपक काद्यान

इस लेख में पिछले दशकों में कैसेट उद्योग में हुए बदलावों और आए उतार-चढ़ावों के साथ-साथ यह समझने की कोशिश की गयी है कि हरियाणवी मौखिक परंपरा को किस प्रकार कैसेट उद्योग में स्थान मिला तथा तकनीकी और ढाँचागत परिवर्तनों से इस उद्योग पर क्या प्रभाव पड़ा। यहाँ कैसेट उद्योग के स्वरूप तथा लोक-गायकों की कहानी कहने के अलावा यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि कैसेट उद्योग ने मौखिक परंपरा से केवल कुछ ही विषयों को क्यों अपनाया, तथा जब मौखिक परंपरा एक वृहत्तर उत्पाद में तब्दील हो जाती है तो उसकी कितनी प्रासंगिकता रह जाती है और इसके मायने में क्या बदलाव आते हैं व कैसेट उद्योग में आ रहे बदलावों के साथ इसमें किस प्रकार के बदलाव देखे जा रहे हैं।

'कैसेट संस्कृति' का आगमन अपने आप में अध्ययन का एक दिलचस्प विषय है पर यह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि 1980 और 1990 के दशकों में ऐसा क्या हुआ जिससे इस माध्यम ने अपनी एक अलग पहचान बनायी। दरअसल, कैसेट उद्योग में हुई इस हलचल के साथ 1990 के शुरुआती वर्षों में आयी नयी आर्थिक नीतियों के फलस्वरूप टेप रिकॉर्डर की क़ीमतों में हुई भारी कमी और विगत दो-ढाई दशकों में हुए तकनीकी बदलाव की कहानी जुड़ी हुई है। इस अध्ययन में हरियाणा में कैसेट उद्योग के आगमन के साथ इसमें आने वाले बदलाव और 'लाइव परफ़ारमेंसेज़' के प्रभावों की चर्चा की गयी है। इन पच्चीस वर्षो के उथल-पुथल को इस अध्ययन में मोटे तौर पर तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहला 1980-1990 का वो शुरुआती दौर जिसमें कैसेट कम्पनियों ने आना शुरू किया। रिसर्च के लिए यह दौर सबसे रोमांचक इसलिए भी बन जाता है क्योंकि इस दौर के रिकॉर्ड अव्वल तो उपलब्ध ही नहीं हैं, यदि हैं भी तो बहुत कम और घिसे-पिटे, जिसके आधार पर कुछ भी स्पष्ट कह पाना मुश्किल हो जाता है। ये वो दौर था जिसमें उद्योग को कलाकारों की ज़रूरत थी लेकिन एक नया माध्यम होने के कारण इस ओर कलाकारों का रुझान बहुत कम था लिहाज़ा बहुत कम कलाकार इस दौर में आगे आए। दूसरा 1990-1999 का वो दौर जिसमें कलाकारों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सेदारी की। चूँकि तब तक उद्योग स्थापित हो चुकी था, लिहाज़ा बड़ी संख्या में कलाकारों ने उद्योग की ओर अपना रुख़ किया और ज़्यादा से ज़्यादा लाभ उठाया। नतीजतन संगीत और सामग्री दोनों ही स्तरों पर बदलाव देखा गया।

गत हरियाणा

सांगीत ओडकी का

गुरु मानसिंह जोगी साकिन महदपुर जिला रोहतक के शिष्य

बणजारा मिट्ठनलाल चुन्नीलाल कृत।

प्रकाशक—शम्भूदयाल दीनानाथ बुकसेलर, दरीबा कलाँ देहली।

शम्भूदयाल दीनानाथ के प्रबन्ध से दीनानाथ प्रेस दरीबा कलाँ देहली में छपी।

तीसरा 1999-2005 का दौर जिसमें बड़े पैमाने पर श्रव्य माध्यम (ऑडियो मीडियम) से दृश्य माध्यम (विजुअल मीडियम) में रुपांतरण हुआ। वही चीज़ें जो ऑडियो कैसेट में थीं अब वीडियो सीडी में आने शुरू हुई। इन्हीं कुछ कहानियों पर आधारित फ़िल्मों का भी निर्माण होने लगा। यह ग़ौरतलब है कि ये परिवर्तन केवल हरियाणा तक ही सीमित नहीं है बल्कि पूरे उत्तर भारत के पैमाने पर और ख़ासकर राजस्थान में इन बदलावों को चिह्नित किया जा सकता है।

यह रिसर्च गायकों, कैसेट कंपनियों के मालिकों से बातचीत तथा लाइव-परफ़ॉरमेंसेज़ पर आधारित है। सबसे पहले यह जान लेना ज़रूरी होगा कि 'पॉप्युलर कल्चर' में वो कौन-सी चीज़ें हैं जो इस माध्यम (कैसेट उद्योग) में जगह पा रही हैं और ये किस प्रकार बाक़ी कैसेट उद्योग से भिन्न है। कैसेट संस्कृति के आगमन से पहले स्वांग/सांग ही लोगों के मनोरंजन का मुख्य साधन होता था। सांग का आयोजन प्रमुख धार्मिक त्यौहारों, जैसे दशहरा, दिवाली, होली आदि पर होता था। सांग में कुछ क़िस्सों/विषयों जैसे महाभारत, नल-दमयंती, राजा नल आदि को रागनियों द्वारा बयान किया जाता है। अत: आज जो भी कैसेट में हैं वो सब रागनियाँ हैं। इन सब क़िस्सों तथा रागनियों की जीवनगाथा काफ़ी लंबी है परंतु कैसेटों में मुख्य रूप से लख्मी चंद (1903-1945) तथा जाट मेहर सिंह (1905-1942) की रचनाएँ मिलती हैं जो अब प्रकाशित भी हो चुकी हैं। इस प्रकार कैसेटों के माध्यम से एक नए प्रकार के आर्काइव का निर्माण हो रहा है। परंतु इससे कई समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं जैसे कि एक क़िस्से में आम तौर पर पचास से ज़्यादा रागनियाँ होती हैं और कई बार सौ से भी ज़्यादा लेकिन कैसेट जैसे माध्यम में इतनी रागनियाँ संभव नहीं हैं। लाइव परफ़ॉरमेंस के दौरान एक स्वांग को पूरा होने के लिए पूरी रात चाहिए लेकिन एक ऑडियो कैसेट में ज़्यादा से ज़्यादा आठ रागनियाँ ही आ सकती हैं। इससे सांग को एक और बड़ा नुक़सान हुआ है। अब वही रागनियाँ या सांग जिसके लिए लोगों को दूसरे गाँवों में जाना पड़ता था, अब कैसेट के माध्यम से घर बैठे सुनी जा सकती है। इसे सार्वजनिक उपभोग का व्यक्तिगत उपभोग में रूपांतरण कहा जा सकता है।

'सपना कैसेट' हरियाणा में सबसे पहले क़दम रखने वाली कंपनी थी। लेकिन यह ज़्यादा सफल न हो सकी और अब तो इसका कोई रिकॉर्ड भी उपलब्ध नहीं है। फ़िलवक़्त 'मैना', 'जगदीश', 'सोनोटेक' तथा 'सुपर लाइन' प्रमुख कैसेट कंपनियाँ हैं जो हरियाणवी संगीत प्रस्तुत करती हैं। यह बड़ी हैरानी की बात है कि क़रीबन सारी कैसेट कंपनियाँ दिल्ली या राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के आस-पास ही स्थित हैं। केवल 'सुपर-लाइन' का उत्पादन रोहतक से होता है। यह भी ग़ौरतलब है कि वाद्य यंत्रों तथा गाने की शैली अकसर उत्पादन केन्द्रों पर निर्भर करती है।

'मैक्स' उन प्रमुख कंपनियों में से है जिसने इस क्षेत्र के लिए कैसेट का उत्पादन प्रारंभ किया। लेकिन यह बताना बड़ा मुश्किल हो जाता है कि वो कौन-सा साल था जिसमें सबसे पहला रिकॉर्ड आया या उत्पादन शुरू हुआ। जिस किसी भी कंपनी से मैंने यह सवाल पूछा, सबने यही कहा - 'हमारी फलाँ-फलाँ के बाद या पहले आयी'। लेकिन यह स्पष्ट है कि ये सारी कंपनियाँ 1982-1984 के बीच स्थापित हुई। शुरुआत में 'मैक्स' ने सांग को चार भागों में प्रस्तुत किया जिसकी क़ीमत 75 से 100 रुपए तक थी। लेकिन तब एक बड़ी समस्या यह थी कि कई बार न चाहते हुए तब लोगों को इन चार कैसेटों का सेट ही ख़रीदना पड़ता था। प्रकारांतर में एक कैसेट में आठ रागनियाँ आयीं और समय के साथ कई बार ये भी छोटी होती चली गयीं। इससे एक और समस्या जो उत्पन्न हुई वो ये कि अब कुछ ही रागनियाँ एक स्वांग का प्रतिनिधित्व करने लगीं और बाक़ी सारी लोगों की याद्दाश्त से ख़त्म होने लगीं। आज हालत यह है कि पूरा-पूरा स्वांग तो पुरानी पीढ़ी को ही याद है और वो भी इस बदलते दौर में कम होने लगी है।

शुरुआती दौर में कैसेट में धार्मिक क़िस्से ही ज़्यादा होते थे। इसका कारण यह भी था कि एक

नया माध्यम होने के कारण इसे लोगों के साथ संबंध स्थापित करना था, इसलिए 'शकुन्तला', 'राजा हरिश्चन्द्र' जैसे सांगों पर ज़्यादा ध्यान दिया गया। ग़ौरतलब है कि 1980 के बाद के दशकों में, जिस दौर टीवी घर-घर पहुँच रहा था उसी समय धार्मिक धारावाहिकों की एक लंबी क़तार खड़ी थी, जैसे रामायण, महाभारत, विश्वामित्र और श्रीकृष्ण। कैसेट उद्योग पर इनके प्रभाव को नहीं नकारा जा सकता है। अपने शुरुआती दौर में कैसेट उद्योग ने बहुत ही कम सामाजिक मुद्दों को उठाया। 'मैक्स' ने इस प्रकार की रिकॉर्डिंग में महारत हासिल की और राजकिशन अगवानपुरिया नामक एक रागनी गायक का लंबे समय तक इनके साथ जुड़ाव बना रहा। अगवानपुरिया की क्षेत्रीय लोकप्रियता रामायण के राम (अरुण गोविल) से कम न थी। लोग इनके पास बड़ी श्रद्धा से जाते थे और उन्हें सन्त कहते थे। ऐसा इसलिए भी था क्योंकि वो बड़े शांत स्वभाव के व्यक्ति थे और पैसे भी ज़्यादा नहीं माँगते थे।

1980 के दशक में सफलता का कीर्तिमान दर्ज कर चुके 'मैक्स' को 1990 के शुरुआती वर्षों से ही दूसरी कैसेट कंपनियों से मुक़ाबला करना पड़ा और अफ़वाहों पर भरोसा करें तो आज यह अपने आख़िरी दिन गिन रहा है। 'मैक्स' के ढलान के कारण संगीत में परिवर्तन तथा गाने के तरीक़े में आने वाले बदलाव रहे। 1990 के दशक में जिस चीज़ ने कैसेट उद्योग को सबसे ज़्यादा प्रभावित किया वह थी प्रतियोगिता। ऐसा नहीं है कि प्रतियोगिता पहले नहीं होती थी लेकिन 1990 के शुरुआती वर्षों में रिकॉर्डिंग के स्टूडियो से बाहर आने के कारण इसमें तेज़ी आयी। रिकॉर्डिंग अब स्टूडियो से बाहर लाइव परफ़ॉरमेंसेज़ के दौरान की जाने लगी। आगे की चर्चा में इसे और स्पष्ट किया जाएगा। अभी ये भी जान लेते हैं कि वो कौन से परिवर्तन थे जिनसे 'मैक्स' को दो-दो हाथ करने पड़े और इनके प्रति 'मैक्स' का क्या रुख़ रहा।

1990 के शुरुआत तक 'टी-सिरीज़' बहुत सफलता पा चुकी थी। ब्लैंक कैसेट बनाने में 'टी-सिरीज़' सफल तो रही ही थी, साथ ही झंकार बीट्स मिला कर पुरानी हिन्दी गानों को भी वह बाज़ार में उतार रही थी। झंकार बीट्स जैसा प्रयोग या किसी अन्य तरह का छेड़छाड़ रागनी के साथ संभव नहीं था। 'मैक्स' ने 'टी-सिरीज़' के तर्ज पर ब्लैंक कैसेट्स बनाना शुरू कर दिया। इस समय ब्लैंक कैसेट बनाना बहुत ही फ़ायदेमंद सौदा था। एक ब्लैंक कैसेट 4-7 रु में बन जाता था। साथ ही 'मैक्स' का अपना स्टूडियो भी था जिसे दूसरी कैसेट कंपनियों को रिकॉर्डिंग के लिए किराए पर दिया जाता था। इसलिए 'मैक्स' के लिए यह एक फ़ायदे का सौदा साबित हुआ। लेकिन इसमें सबसे बड़ी समस्या यह हुई कि 'मैक्स' ने ख़ुद के लिए नए रिकॉर्ड बनाने बंद कर दिए। लेकिन यह लाभदायक स्थिति भी बदल गयी जब और क्षेत्रीय कैसेट कंपनियों ने भी ख़ुद के लिए ब्लैंक कैसेट बनाने शुरू कर दिए। 'मैक्स' अब भी अपने पुराने रिकॉर्ड्स ही बेच रहा है और तीसरे दौर के बदलावों में इसका बहुत कम योगदान रहा। 'मैक्स' अपना सारा कारोबार दिल्ली स्थित लाजपत राय बाज़ार स्थित अपनी दुकान से चलाता है।

'मैना' कैसेट कंपनी की शुरुआत वैसे तो बहुत ही हल्के तौर पर हुई लेकिन आज यह कैसेट उत्पादन में सबसे आगे है। यह कंपनी हरियाणवी, नेपाली और भोजपुरी फ़िल्म-निर्माण में भी अग्रणी है। अब यह उत्तरांचल के लिए भी फ़िल्म-निर्माण प्रॉजेक्ट पर भी काम कर रही है। 1990 के आरंभ में दिल्ली को अपना ठिकाना बनाने से पहले 'मैना' अपनी सारी गतिविधियाँ पश्चिमी उत्तरप्रदेश के दादरी जिले में स्थित अपनी दुकान से चला रही थी। 'मैना' ने अपनी प्रमुख रिकॉर्डिंग 'मैक्स स्टूडियो' में की। पहले 'मैक्स स्टूडियो' 'मैक्स कंपनी' के अधीन थी सन् 2000 में इसे 'मैना' ने ख़रीद लिया। इसी में एक मास्टर कॉपी तैयार की जाती है और इसी से और कैसेट और सीडी की रिकॉर्डिंग होती है। रिकॉर्डिंग के बाद इन्हें लाजपतराय बाज़ार स्थित 'मैना' की दुकान में भेज दिया जात है जहाँ से वितरण का काम होता है। 'मैना' की कहानी पहले दौर में लगभग 'मैक्स' जैसी ही है लेकिन दूसरे दौर में आने वाले बदलावों के साथ इसने नए-नए प्रयोग किए। इन बदलावों में सबसे बड़ा था फ़िल्मी तर्ज पर रागनियों का गाया जाना। इनमें कुछ प्रमुख धुनें जिन्होंने अत्यधिक लोकप्रियता पाई वे हैं -'मेरी छतरी के नीचे

आ जा ...' तथा 'तूतक तूतक तूतिया ...'। यहाँ यह ग़ौरतलब है कि उस दौर में पंजाबी सिनेमा तथा गानों की धूम थी और यह कहना भी ग़लत न होगा कि पंजाबी सिनेमा ही ऐसा सिनेमा था जो उत्तर भारत में बॉलीवुड के बाद सबसे बड़े विकल्प के तौर पर उभर कर सामने आया। पंजाबी पॉप ने भी बाक़ी क्षेत्रीय धुनों तथा शब्दों को प्रभावित किया। इस समय तक जब 'मैक्स' नए रिकॉर्ड बनाने बंद कर चुका था, 'मैना' और 'जगदीश' कैसेट कंपनी ने इन बदलावों को हाथों हाथ लिया। कच्चे साज़ का बहुतायात इस्तेमाल इस दौर का एक और महत्त्वपूर्ण बदलाव था। हरियाणवी लोक संगीत में संगीत यंत्रों को कच्चे साज ़और पक्के साज़ में विभाजित किया जा सकता है। कच्चे साज़ में मिट्टी के चार घड़े, बैंजो, खड़ताल और सहायक गायक होते हैं। वहीं दूसरी ओर पक्के साज़ में सारंगी, मिट्टी के चार घड़े, हारमोनियम, दो चिमटे और सहायक गायक होते है। पक्का साज़ बजाने के लिए कुशलता की ज़रूरत होती है और इसका प्रयोग 1930 और 1940 के दौरान लाइव-परफ़ॉरमेंसेज़ में होता था लेकिन यह काफ़ी कठिन होता है और धुनें भी कम होती हैं जिसकी वज़ह से फ़िल्मी धुनों का चलन काफ़ी बढ़ा। साथ ही अब लोकगीत फ़िल्मी धुनों पर उपलब्ध हैं इसलिए इनकी लोकप्रियता और ज़्यादा बढ़ी। अब फ़िल्मी धुनों के साथ-साथ अश्लील चुटकुलों का सहारा भी लिया जाने लगा और रागनी इनके बिना अधूरी रहने लगी।

यहाँ पर प्रतियोगिता को अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक होगा। प्रतियोगिता यानी कॉम्पीटिशन। एक प्रकार का द्वंद्व। जैसा कि पहले ज़िक्र किया जा चुका है एक कैसेट में क़रीब आठ रागनियाँ होती हैं और वो भी किसी एक गायक के स्वर में किसी एक क़िस्से का बयान। लेकिन प्रतियोगिता में ये स्थिति बदल जाती है। प्रतियोगिता का आयोजन किसी सार्वजनिक त्यौहार या ख़ुशी के मौक़े पर किया जाता है। इसमें कई गायकों को बुलाया जाता है और यह पूरी रात चलता है। इसमें एक धुन पर रागनी गानी होती है और इस प्रकार जो नहीं गा पाता वो मुक़ाबले से बाहर हो जाता है। प्रतियोगिता के लिए स्टूडियो की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं होती है। इस दौर की सबसे प्रमुख विशेषता यह रही कि इसमें रिकॉर्डिंग को स्टूडियो की बंद दीवारों से निकाल कर बाहर मंच पर ले जाया गया। इस प्रकार की कैसेटों को जिस जगह पर प्रतियोगिता आयोजित की जाती है, उसी के नाम पर निकाल दिया जाता है, जैसे 'बहादुरगढ़ कम्पीटिशन रागनियाँ वॉल्यूम 1, 2, 3, 4', 'सोनीपत कम्पीटिशन रागनियाँ वॉल्यूम 1, 2, 3, 4'। कई बार प्रतियोगिता वाली कैसेटें जाने-माने गायकों के नाम पर भी निकाल दी जाती हैं, जैसे 'पाले की सुपर हिट रागनियाँ', 'कर्मवीर की सुपरहिट रागनियाँ'। प्रतियोगिता के आयोजन से रिकॉर्डिंग पर लागत कम आता है क्योंकि कलाकारों का मेहनाता पहले ही आयोजकों द्वारा अदा कर दिया जाता है। प्रतियोगिताएँ नए कलाकारों को अपना हुनर दिखाने का अच्छा अवसर प्रदान करती हैं।

प्रतियोगिताओं ने कैसेट उद्योग को बड़े ही नाज़ुक मोड़ पर मदद की क्योंकि पारंपरिक धुनें ख़त्म-सी हो गयी थीं तथा पॉप्युलर कल्चर का दायरा भी काफ़ी सिमट गया था। ऐसे में उद्योग के सामने सवाल यह था कि या तो वह नए विकल्प ढूँढे या फिर पॉप्युलर कल्चर की अन्य चीज़ों को कैसेटबद्ध करे जो कि संभव नहीं था। प्रतियोगिता के कारण नए गायकों को उभरने का मौक़ा मिला तथा और सांग भी 'वन डे क्रिकेट' की तरह

फटाफट मनोरंजन का साधन बन गया जिसमें अलग-अलग क़िस्सों पर आधारित बहुत-सी रागनियाँ एक साथ उपलब्ध होने लगीं। प्रतियोगिता ने ही महिला गायकों को मंच पर एक नयी पहचान दी और बाद में यहीं से सामाजिक तथा प्रगतिशील विचारधारा को एक नया माध्यम मिला।

हरियाणवी इलाक़े में सफलता प्राप्त करने के बाद 'मैना' ने दूसरे क्षेत्रों, मसलन उत्तर प्रदेश और बिहार में क़दम रखा। इसके लिए 'सोनोटेक' नाम से कैसेट निकाली गयी जो मुख्यत: उत्तर प्रदेश और बिहार के संगीत उत्पादन करती है। ये वो दौर था जब एक ही कैसेट कंपनी कई क्षेत्रों के लिए उत्पादन करने लगी और तीसरे चरण में आते-आते ये न केवल कैसेट तक सीमित रहा बल्कि वीडियो फ़िल्में भी बनाने लगी। इस चरण में कैसेट उद्योग का पुनर्गठन हुआ जिसमें उद्योग का वर्चस्व स्थापित हुआ और दिल्ली एक अनौपचारिक उत्पादन केंद्र के तौर पर उभर कर सामने आया। पहले चरण में भी कलाकार की अपनी ख़ुद की एक पार्टी या ग्रुप होता था लेकिन उद्योग को उसकी सेवाओं की ज़रूरत होती थी पर लोक गायकों में कोई ख़ास उत्साह नहीं था। लेकिन कैसेट उद्योग की सफलता ने हालात बदले और अब कलाकार ख़ुद-ब-ख़ुद दिल्ली का रुख़ करने लगे।

इस कड़ी में एक और कैसेट कंपनी की चर्चा करना ज़रूरी होगा। यह है दिल्ली-हरियाणा बॉर्डर पर नरेला में स्थित 'जगदीश कैसेट कंपनी'। इसकी शुरुआत भी लगभग 'मैना' के साथ ही हुई थी। इसने भी फ़िल्मी धुनों, चुटकुलों और प्रतियोगिताओं के ज़रिए सफलता हासिल की। लेकिन दोनों में कुछ ढाँचागत अतंर है। जैसे 'मैना' के पास अपना स्टूडियो है जो वह औरों को भी किराए पर देता है लेकिन 'जगदीश' को यह साधन उपलब्ध नहीं है। 'मैना' ने दूसरे क्षेत्रों में भी अपना प्रसार किया है जबकि 'जगदीश' अब भी हरियाणा केंद्रित उत्पादन ही करता है। इसकी लाजपत राय बाज़ार में अपनी कोई दुकान नहीं है, वितरण का सारा काम नरेला स्थित थोक और ख़ुदरा दुकान से होता है। अन्य जगहों पर जगदीश स्वंय अपनी कैसेट बेचकर आता है। लाजपत राय बाज़ार से हिन्दी फ़िल्मी गीतों तथा अन्य क्षेत्रीय गीतों के कैसेट भी वह स्वयं ही ख़रीद कर ले जाता है।

यह न केवल अभिजात/वर्चस्वशाली माध्यम से सामग्री के लिहाज़ से भिन्न है बल्कि लोगों तक इसकी पहुँच भी बहुत आसान है। तकनीक के इस लोकतांत्रिकरण में हर कोई भागीदार है। इसी विषय को भगवती प्रसाद अपने लेख में उजागर करते हैं और बताते हैं कि किस प्रकार दिल्ली के छोटे से कमरे में रेडियो सेट, टेप रिकॉर्डर, सीडी प्लेयर, इत्यादि चीज़ों का निर्माण किया जाता है और उन पर किसी भी बड़ी कंपनी का लेबल लगा दिया जाता है या किस प्रकार एक बड़े ब्रैंड से मिलता जुलता नाम रख दिया जाता है जैसे ऑडियोविज़न सीडी इत्यादि। इसी विषय पर चर्चा करते हुए रवि सुंदरम इसे 'ब्लीडिंग कल्चर' का रुपक देते हुए बताते हैं किस प्रकार यह क़ानून और बौद्धिक संपदा क़ानून के दायरे से बाहर रहता है लेकिन इसका दायरा बढ़ता ही रहता है। क़ानूनी पचड़ों और ऐसे मुद्दों के दायरे में आते हुए भी ये उनके अंदर नहीं आते, इन्हीं छिद्रदार वैधानिकतओं की वजह से यह माध्यम दिनोंदिन फल-फूल रहा है।

अभी तक की सारी कहानी कैसेट उद्योग पर केंद्रित थी लेकिन कैसेट उद्योग को अच्छी तरह समझने के लिए गायकों के जीवन पर भी एक नज़र डालना ज़रूरी है। लेख के इस भाग में यह जानने की कोशिश की जाएगी कि एक नए आधुनिक माध्यम ने पारंपरिक जुड़ावों और संरक्षण को किस हद तक खंडित किया है या उसे मज़बूत बनाया है।

पहले बताया जा चुका है कि कैसेट में जो कुछ भी आया उसका एक लंबा इतिहास है। 'कैसेट संस्कृति' के आने से पहले ये सभी चीज़ें लोक-जीवन का एक हिस्सा थीं जिसमें संरक्षण के नेटवर्क और निर्भरता के लिए ज़रूरी जुड़ावों की एक अहम भूमिका होती थी। प्रमुख लोक कलाकारों को त्यौहारों

पर बुलाया जाता था और उन्हें सम्मानित किया जाता था। साथ ही उन्हें अनाज और अन्य ज़रूरी सामान दिए जाते थे। कैसेट संस्कृति के आगमन से इस व्यवस्था पर असर पड़ा। शुरुआती दौर में इसके ख़िलाफ़ तीव्र प्रतिक्रियाएँ आयीं जो बाद में धीरे-धीरे कम हुईं। 1970 के प्रमुख कलाकारों ने कैसेट के लिए कुछ भी नहीं गाया। हरियाणा का अंतिम सांगी कहे जाने वाले पंडित जगन्नाथ ऐसे ही एक प्रमुख कलाकार हैं जिन्होंने कभी कैटेस के लिए नहीं गाया।

एक और रागनी गायक राजकिशन अगवानपुरिया ने काफ़ी नाम अर्जित किया। सन 2001 में उनका निधन हो गया। मास्टर सतबीर आज सबसे पुराने रागनी गायक हैं। ऐसा कोई क़िस्सा या रागनी नहीं जो इन्होंने न गायी हो। तक़रीबन हर कैसेट कंपनी के लिए इन्होंने अपना स्वर दिया है। आजकल इन्होंने गाना बंद कर दिया है। कुछ तो तबीयत ख़राब रहने के कारण और कुछ इसलिए भी कि नयी फ़िल्मी धुनों पर ये कम ही गा पाते हैं।

यहाँ यह अंतर स्पष्ट कर देना ज़रूरी है कि जहाँ एक ओर पंडित जगन्नाथ एक सांगी है और केवल परफ़ॉर्म करने के साथ-साथ नए-नए सांग या रागनियों की रचना भी करते हैं, वहीं दूसरी ओर अन्य गायक केवल पुरानी रागनियों को गाते हैं और पॉप्युलर कल्चर को समृद्ध करने में उनका बहुत ही कम योगदान रहा है। हाँ, इस कला को दूर-दराज़ के क्षेत्रों में इन्होंने प्रचलित ज़रूर किया है।

इस हिस्से में उन गायकों की चर्चा की जा रही है जिन्होंने रागनी को नया रूप प्रदान किया और काफी लोकप्रिय भी हुए। इनमें सबसे पहला नाम हलालपुर निवासी पालेराम का है। इन्होंने 1970 के बाद के दशक में गायन के क्षेत्र में हाथ-पाँव मारना आरंभ किया। सालों की मेहनत के बाद मध्य अस्सी में इन्हें गाने का मौक़ा मिया। तब तक इन्होंने अपना एक ग्रुप बना लिया था। रागनी को हिन्दी फ़िल्मी धुनों पर गाने का श्रेय भी इन्हीं को जाता है। रागनी गाने के लिए काफ़ी भारी और ऊँची आवाज़ चाहिए जिसमें इन्होंने महारत हासिल की। इनके करियर में ऐसे दौर भी रहे जिसमें इन्होंने दिन-रात कैसेट कंपनी के लिए गाया। 1988-94 के बीच सभी गायक बहुत व्यस्त थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि पॉप्युलर कल्चर जल्द ही समाप्त होता दिखने लगा था या यों कहें कि सारा का सारा लगभग कैसेटबद्ध हो गया था। नयी रिकॉर्डिंग नहीं हुई। पर हक़ीक़त ये है कि कैसेट ने इनको लोकप्रियता दिलायी, लिहाज़ा नयी-नयी जगहों से गायकों के लिए निमंत्रण आए। आज हालत यह है कि महीने में लगभग पच्चीस दिन ये कहीं न कहीं किसी न किसी अवसर पर परफ़ॉर्म कर रहे होते हैं। रिकार्डिंग का दूसरा दौर वीसीडी के आने से हुआ। 2000-2003 के बीच इन्होंने फिर से लगभग सारी रागिनियाँ रिकॉर्ड कीं। वीसीडी पर अब प्रतियोगिताएँ भी उपलब्ध होने लगे। जहाँ कैसेट रिकॉर्डिंग के लिए सात हज़ार से नौ हज़ार रुपए तक दिए जाते थे वहीं वीसीडी रिकॉर्डिंग के लिए यह राशि बढ़कर दस से बारह हज़ार हो गयी।

कुछ ऐसी ही कहानी रणबीर बड़वासनिया की है। इन्हें भी गाने का मौक़ा अस्सी के दशक के मध्य में मिला। पाले राम के साथ इनकी ख़ूब जमी और नब्बे के दशक में इन दोनों का ही बोलबाला रहा। नब्बे के बाद के दशक में नए गायक आने शुरू हुए जिन्होंने रागनी में पंजाबी शब्दों तथा डीजे धुनों का भरपूर इस्तेमाल किया।

इस कहानी के बाद अब एक रागनी पार्टी के ढाँचे पर ग़ौर फरमाते हैं। यह जानना और भी ज़रूरी हो जाता है कि ये सब कहाँ से आते हैं और कैसे संगीत यंत्र बनाने में निपुणता हासिल करते हैं। ये एक ग्रुप ही है जिसकी बदौलत एक रिकॉर्डिंग तीन-चार घंटे में पूरी हो जाती है क्योंकि सभी एक-दूसरे को जानते हैं। एक ग्रुप में आठ से दस सदस्य होते हैं। पाले राम और रणबीर का ग्रुप क़रीबन आठ साल पुराना है। इन सदस्यों को हर रिकॉर्डिंग पर लगभग चार से सात सौ रुपए तक मिल जाते हैं। इनका हिस्सा पूरी फ़ीस पर निर्भर करता है। यदि ज़्यादा फीस है तो इनका हिस्सा भी ज़्यादा होगा। संगीत यंत्रों

के विषय में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। ग्रुप में एक सदस्य बैंजो बजाता है चार मटका बजाते हैं, दो चिमटे बजाते हैं और बाक़ी गायक को सहायता प्रदान करते हैं। वैसे तो एक रिकॉर्डिंग में इन्हें कम ही पैसे मिल पाते हैं लेकिन ग्रुप में होने का एक बड़ा फ़ायदा यह होता है कि वे दूसरों के लिए भी संगीत यंत्र बजा सकते हैं। यह बताना भी ज़रूरी है कि ये किसी पाठशाला या गुरू-शिष्य परपंरा के तहत नहीं बल्कि देखते-बजाते ये संगीत और वाद्य यंत्र सीख जाते हैं। अपने शौक़ को पूरा करने के लिए ये इन वाद्य यंत्रों को बजाना शुरू करते हैं। जब अच्छा बजाने लगते हैं तब इनकी लोकप्रियता एक गाँव से दूसरे गाँव तक फैल जाती है। यदि कोई नया गायक अपनी पार्टी बनाना चाहता है तो इससे संपर्क कर लेता है। गायक भी किसी प्रकार का प्रशिक्षण नहीं लेता है बल्कि लाइव परफ़ॉरमेंस और कैसेट सुनकर अपनी गायकी सुधारता है। जातीय संरचना के लिहाज़ से देखें तो पता चलता है कि ये किसी ख़ास जाति से संबंध नहीं रखते। विभिन्न जातियों से लोग इस क्षेत्र में आते हैं। सिर्फ़ पालेराम ही ऐसा गायक है जिसके ग्रुप में कुछ मिरासी संगीतकार हैं जो संगीत से जुड़ी एक पारंपरिक जाति है। और गहराई में देखने पर पता चलता है कि कई जातियों के लोगों का संगीत बजाना विभाजन के बाद संभव हुआ। विभाजन से पहले क़रीबन सारे साज़िन्दे (साज़ बजाने वाले) मिरासी होते थे। लेकिन विभाजन के बाद ये सारे यहाँ से पलायन कर गए।

ऐसा नहीं है कि इन गायकों ने केवल प्राइवेट कैसेट कंपनी के लिए ही गाया हो। पालेराम और रणवीर दोनों ही ऑल इंडिया रेडियो के रोहतक और दिल्ली स्टेशन के लिए गा चुके हैं। कई अन्य गायक भी ऑल इंडिया रेडियो के लिए गा चुके हैं। आकाशवाणी के लिए गाने पर इन्हें चार-पाँच हज़ार रुपए तक दिए जाते हैं। यह इनके लिए भी फ़ायदेमंद होता है क्योंकि पूरी रिकॉर्डिंग न करवा कर कुछ ही रागनियाँ रिकॉर्ड करवाता है, कभी तीन या ज़्यादा से ज़्यादा चार रागनियाँ जो कि दो घंटे में पूरी हो जाती हैं। साथ ही कलाकारों को आने-जाने का ख़र्चा भी दिया जात है। आकाशवाणी ने गायकों का वर्गीकरण किया हुआ है और उसी के हिसाब से वह उनका मेहनाताना अदा करता है। हाल ही में इसने पालेराम को ग्रेड 'ए' में शामिल किया है जबकि रणवीर अभी ग्रेड 'बी' में है। रोहतक स्टेशन आरंभ होने के बाद हरियाणवी कलाकारों को ज़्यादा मौक़ा मिलने लगा। किन्हीं कारणों से ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली ने हरियाणवी गायकों को कुछ समय के लिए बुलाना बंद कर दिया था, परंतु हाल ही में नए निदेशक ने इन्हें फिर से बुलाना शुरू किया है।

कैसेट उद्योग के उतार-चढ़ाव के साथ इन गायकों के जीवन में भी उतार-चढ़ाव आया है। जब रिकॉर्डिंग होनी बंद हो गयी तब ये लोगों द्वारा आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों पर जाने लगे जहाँ इन्हें दस से बारह हज़ार रुपए तक दिए जाते हैं और साथ में आने-जाने का ख़र्च भी। कलाकार दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश आते-जाते रहते हैं पर पंजाब में अभी भी इन्हें अपना प्रभाव जमाना बाक़ी है। नयी रिकॉर्डिंग के अभाव में यही एकमात्र साधन है जिसके द्वारा ये अपना जीवन-यापन करते हैं। नयी रिकॉर्डिंग के अभाव में कैसेट कंपनियाँ गायकों के नाम पर पुराने रिकॉर्ड निकालती रहती हैं जैसे 'पाले की हिट रागिनियाँ'। यह चलन 'एचएमवी' ने पुराने गायकों द्वारा गाए गीतों का 'ग्रैंड कलेक्शन' निकालकर आरंभ किया। बाद में देखादेखी इन क्षेत्रीय कैसेट कंपनियों ने भी इस तरह के रिकॉर्ड्स निकालने शुरू किए।

एक नया चलन भी देखने में आया है। दूसरे प्रदेशों से आने वाले गायकों के साथ यह शुरू हुआ है। बिहार या दूसरे प्रदेशों से आने वाले कुछ गायक भी हरियाणवी गीत गाते हैं। इसमें समस्या ये है कि वो रागनी नहीं गा सकते हैं इसलिए वे साधारण गीतों को हरियाणवी भाषा व शैली में गाते है जिनका दूर-दूर तक हरियाणवी पॉप्युलर कल्चर से कुछ लेना-देना नहीं होता है। इसी तीसरे चरण में हम देखते हैं कि यह ऑडियो माध्यम अब विज़ुअल माध्यम में बदलता जा रहा है। अब हर सांग की वीसीडी भी उपलब्ध है। दूसरे प्रदेशों के गायक हरियाणवी तो गा ही रहे हैं, फ़िल्मों में भी काम कर

रहे हैं। इसी कड़ी में मुख्य है भजनों का आना। हम जानते हैं हरियाणा एक खेतिहर और जनजातीय समाज रहा है। यहाँ ब्राह्मणवाद बहुत कम रहा है, इसलिए यहाँ धार्मिक गीत कम ही गाए जाते हैं। लेकिन इस माध्यम के ज़रिए नए-नए भजनों को डीजे मिक्स कर हरियाणा को परोसा जा रहा है, जैसे 'भोले के भजन डीजे मिक्स', 'नरसी का भात' इत्यादि। ऐसा नहीं है कि हरियाणवी संगीत दूसरे प्रदेशों के प्रभाव से अछूता रहा है। इसमें पंजाबी गानों की छाप तो मिलती है। इसलिए कह सकते हैं कि दूसरे क्षेत्रों के गायकों का हरियाणवी गाना कोई नयी परिघटना नहीं है।

कैसेट एक आधुनिक माध्यम है। अपेक्षा की गयी होगी कि इस नए माध्यम के आगमन से इस क्षेत्र में आधुनिकता अपने क़दम रखेगी, लेकिन इसने स्थिति को और भी जटिल कर दिया है। हर गायक अपने नाम के बाद गोत्र न लगाकर अपने गाँव का नाम जोड़ता है, जैसे राजकिशन अगवानपुरिया (अगवानपुर गाँव से संबंधित), रणवीर बड़वासनिया (बड़वासनी गाँव से संबंधित) कुशिन्दर खुदाना (खुदाना गाँव से संबंधित), इत्यादि। इसका फ़ायदा यह होता है कि नयी कैसेट कंपनी को इन्हें ढूँढने में ज़्यादा परेशानी नहीं होती। दूसरी ओर यह भी ग़ौरतलब है कि यदि कोई कुछ अच्छा काम करता है तो वह अपना नाम तो रोशन करता ही है, गाँव की शान भी बढ़ाता है। ऐसे में वह गाँव की पहचान न होकर गाँव उसकी पहचान बन जाती है। यह केवल इन गायकों तक ही सीमित नहीं है बल्कि कई

पहलवान और अफ़सर भी अपने गाँव का नाम ही गोत्र-नाम के तौर पर इस्तेमाल करते हैं जैसे ओमप्रकाश चौटाला।

इस सूक्ष्म माध्यम और लोकतांत्रिक सहभागिता की वजह से एक महत्त्वपूर्ण बदलाव आया है। इसने स्त्रियों को सार्वजनिक रूप से परफ़ॉर्म करने का स्पेस दिया है। जैसा कि दूसरे चरण में देखा गया कि 1990 के दशक में स्त्रियों का मंच पर आगमन हुआ और अब कॉलेज जाने वाले छात्र और छात्राएँ वीसीडी फिल्मों में काम कर रहे हैं। इस प्रकार की वीसीडी फ़िल्मों में लगभग बारह से पंद्रह हज़ार रुपए की लागत आती है और इन्हें बड़े पैमाने पर रिलीज़ किया जाता है। आज बहुत सारी महिला कलाकारों को शोहरत मिली है जिसमें उपासना शर्मा, सुदेश शर्मा और सुमन नेगी है। सुमन नेगी को इस सिने-उद्योग का ऐश्वर्या राय भी कहा जाता है।

तीसरे चरण का बदलाव सबसे महत्त्वपूर्ण रहा है। इस दौर में उद्योग में न केवल ढाँचागत परिवर्तन हुआ है बल्कि रागनी-ग्रुप में भी एक प्रकार की तरतमता स्थापित हो गयी है। जहाँ पहले लाइव परफ़ॉरमेंस में हर सदस्य एक किरदार होता था, किसी भी प्रकार का श्रेणीक्रम नदारद होता था। हर कलाकार उतना ही महत्त्वपूर्ण होता था जितना कि दूसरा, लेकिन दृश्य माध्यम के आने से गायक एक केन्द्र बन गया और बाक़ी सारे साज़िन्दों की भूमिका कम आँकी जाने लगी।

अब थोड़ी चर्चा वीसीडी फ़िल्मों की। वीसीडी फ़िल्मों पर क़रीबन पन्द्रह से पच्चीस हज़ार रुपए तक की लागत आती है। अब इनका वितरण भी लाजपत राय बाज़ार से होता है। लागत इस बात पर निर्भर करती है कि किस रूप को दृश्य माध्यम में पेश किया जा रहा है। यदि यह एक क़िस्सा या सांग है तो इसमें बहुत ही कम हलचल/मूवमेंट होती है लेकिन अगर यह कोई फ़िल्म है तो इसमें बहुत सारे किरदार होंगे और हलचल भी ज़्यादा होगी। इनकी रिकॉर्डिंग किसी शादी के पंडाल में की जाती है या रोहतक रोड पर नाँगलोई से निकल कर आने वाले रेस्तराँओं में या गुड़गाँव के किसी बंगले में। अपनी वैधता/असलियत साबित करने के लिए आजकल होलोग्राम भी लगाए जाने लगे हैं। एक मास्टर होलोग्राम की क़ीमत दस हज़ार रुपए होती है और अगले हर होलोग्राम की क़ीमत तक़रीबन साढ़े चार पैसे बैठती है। आज 'मैना' के पास सात सौ से ज़्यादा फ़िल्मों के टाइटल्स हैं और सात से ज़्यादा हरियाणवी फ़िल्म जो कि सिनेमा के लिए बनी थी उनके कॉपीराइट हैं। साथ ही यह पश्चिमी उत्तर प्रदेश की बोली और भोजपुरी में फ़िल्मों का निर्माण कर रही है। 'जगदीश' के पास दो सौ से ज़्यादा हरियाणवी वीसीडी फ़िल्मों के टाइटल्स हैं। फ़िलहाल इनका हरियाणा पर ही केन्द्रित रहने का विचार हैं।

मेरी मुलाक़ात कई कलाकारों से भी हुई और बहुत सारे कलाकार मुम्बई नगरी में भी अपनी क़िस्मत आज़मा रहे हैं और साथ में इन क्षेत्रीय फिल्मों से नाम कमाना चाहते हैं। इन कलाकारों का विचार बड़े पैमाने पर उन क्षेत्रों के लिए फ़िल्में बनाना है जिन्हें अब तक इस तकनीकी विस्फोट का एहसास नहीं हुआ है।

अब तक इस लेख में हरियाणा में कैसेट उद्योग के आगमन से लेकर अभी तक आने वाले बदलावों की चर्चा की। कैसेट उद्योग के शुरुआती वर्षों में देखा गया कि उसको कोई ख़ास प्रोत्साहन नहीं मिला, कई छोटी कंपनियाँ जैसे सपना बंद हो गयीं। उसके बाद अन्य कैसेट कंपनियों ने अपने पैर जमाए और संगीत और पाठ में बदलाव कर इसे संभाला। हाल के वर्षों में इन्हीं कंपनियों ने छोटे पैमाने पर क्षेत्रीय फ़िल्मों के निर्माण के क़दम रखा है।

कैसेट संस्कृति ने मौखिक परंपरा पर बहुत गहरा असर डाला है। सबसे पहले अब ज़बान(ी) को एक स्वरूप मिल रहा है और जो चीज़ पहले लोगों के जीवन का एक हिस्सा थी और एक स्मृति के रूप में जनमानस में बसी हुई थी वो अब निजी उपभोग के लिए उपलब्ध होने लगी। यह भी कह सकते

हैं कि कैसेट ख़ुद एक आर्काइव का रूप अख़्तियार करता जा रहा है। हरियाणा के संदर्भ में यह और भी दिलचस्प है कि जो कुछ भी कैसेट में आया वह इसी मौखिक परंपरा का एक हिस्सा है। रागनी से हटकर बिल्कुल नयी चीज़ न के बराबर है। यह इसीलिए और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इन्हीं स्वांगों पर आधारित फ़िल्में भी बन रही हैं जो कि और किसी क्षेत्रीय फ़िल्मों में नहीं हो रहा है। इससे एक सवाल उठता है कि जब सारी रागनियाँ न कि सारा मौखिक परंपरा/पॉप्युलर कल्चर कैसेट के रूप में उत्पाद/वस्तु बनती जा रही है तो स्वांग कितना वाइब्रेंट रह गया है। आज जब पॉप्युलर कल्चर कैसेटबद्ध होने के बाद पब्लिक स्पेस से निकल कर केवल निजी उपभोग की वस्तु बन गयी है, ऐसे में सार्वजनिक परफ़ॉरमेंस कितनी जानदार रह जाती है? इस सवाल का जवाब खोजना बहुत ही मुश्किल हो जाता है क्योंकि एक तरफ़ जहाँ मौखिक परंपरा के और रूप जैसे चौबाला, बम-लहरी (शिव-पार्वती के क़िस्से), आल्हा जैसी परंपराएँ ख़त्म होती जा रही हैं, कैसेट में इन्हें न के बराबर स्थान मिल रहा है, जबकि दूसरी ओर रागनी का स्वरूप भी काफी हद तक बदला है। पहले यह केवल स्वांग का एक हिस्सा हुआ करती थी। बाद में उसे प्रतियोगिता के रूप में ढाला गया और फिर फ़िल्मों में।

कैसेट संस्कृति से एक और समस्या जो उत्पन्न हुई है वो है मौखिक परंपरा के नायकों का बदला जाना। जैसा पहले भी उल्लेख किया गया है कि ज़्यादातर रागनियाँ और सांग पंडित लख्मी चंद, पंडित दीप चंद, जाट मेहर सिंह द्वारा रचित हैं और हर रागनी के अंतिम हिस्से में इसके रचयिता का नाम मिलता है, लेकिन आज के दौर में जब बहुत सारी रचनाएँ याद्दाश्त से ख़त्म-सी हो गयी हैं किसी की रागनी पर किसी और का नाम लगा दिया जाता है। हालाँकि इसके साथ एक अच्छी बात यह उभर कर आयी है कि इस मौखिक परंपरा को अब लिखित रूप प्रदान किया जाने लगा है। इसी कड़ी में पंडित लख्मी चंद, फ़ौजी (जाट) मेहर सिंह, पंडित माँगे राम की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं और कई अन्य की आने वाली हैं।

कैसेट संस्कृति ने केवल मौखिक परंपरा को ही नहीं बल्कि सामाजिक संदेशों को भी एक माध्यम प्रदान किया जो कि ज़्यादातर महिलाओं ने गाया है। यह भी ग़ौरतलब है कि कैसेट संस्कृति राजनीति से भी अछूती नहीं रही। चुनाव के कुछ समय पहले हर पार्टी अपनी उपलब्धियों का बखान करती हुई कैसेटें रिलीज़ करती है।

इस लेख में केवल कैसेट उद्योग के स्वरूप और इसमें आने वाले बदलावों की ही चर्चा की गयी है। हरियाणा में कैसेट संस्कृति पर और ज़्यादा प्रकाश डालने के लिए और विस्तृत अध्ययन की ज़रूरत है।

संदर्भ

1. 'कैसेट कल्चर' पद का उपयोग सबसे पहले पीटर मैनुएल ने अपनी किताब में किया। *कैसेट कल्चर: पॉप्युलर म्युज़िक ऐंड टेक्नॉल्जी इन नॉर्थ इंडिया*, (ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2001) में उन्होंने पूरे उत्तर भारत के संदर्भ में दर्शाया है कि किस प्रकार उत्तर भारत में क्षेत्रीय गीतों को कैसेट में स्थान मिला, तथा तकनीकी बदलावों का संगीत उद्योग पर क्या असर पड़ा।

2. लाजपतराय बाज़ार के लिए देखें, संपादक राकेश कुमार सिंह, *मीडियानगर 02*, सराय-वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005

3. 'ब्लीडिंग कल्चर' के लिए देखें, रवि सुंदरम, 'अनकैनी नेटवर्क्स: पायरेट, अर्बन, न्यू ग्लोबलाइजेशन', *इकॉनॉमिक ऐंड पोलिटिकल वीकली*, 3-9 जनवरी, 2004